## हताशा के कदम

म्मू-कश्मीर में धारा तीन सौ सत्तर खत्म किए जाने के बाद पाकिस्तान की बौखलाहट चरम पर है। उसे समझ नहीं आ रहा कि क्या करना चाहिए। किस तरह प्रतिक्रिया व्यक्त करनी चाहिए। इसी बौखलाहट में इमरान खान सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा समिति की बैठक में भारत के साथ द्विपक्षीय व्यापार खत्म करने का फैसला किया। भारतीय उच्चायुक्त को वापस जाने को कह दिया और कश्मीर मसले को संयुक्त राष्ट्र में ले जाने का निर्णय लिया। भारत के स्वतंत्रता दिवस को काले दिन के रूप में मनाने का भी फैसला किया है। भारत ने इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। पाकिस्तान जानता है कि उसके इन कदमों का भारत पर कोई असर नहीं पड़ेगा। उसके द्विपक्षीय व्यापार खत्म कर देने से भारत का नहीं, ज्यादा नुकसान उसी का होने वाला है। जब भारत ने कुछ दिनों पहले पाकिस्तान का तरजीही राष्ट्र का दर्जा खत्म कर दिया था और वहां से आने वाली कुछ वस्तुओं पर कर लगा दिया था तो वह बहुत हताश हुआ था। इसकी प्रतिक्रिया में उसने भी भारत से भेजी जाने वाली करमुक्त वस्तुओं पर भारी कर थोप दिया था। लेकिन इतने भर से उसने संतोष नहीं हुआ, तो उसने तरजीही राष्ट्र का दर्जा खत्म करने के फैसले को अंतरराष्ट्रीय अदालत में चुनौती देने की भी धमकी दी थी। अब उसी ने द्विपक्षीय व्यापार खत्म करने का फैसला किया है।

दरअसल, भारत और पाकिस्तान के बीच द्विपक्षीय व्यापार मुख्य रूप से कश्मीर वाले हिस्से से होता रहा है। उसमें भी भारत से बहुत कम चीजें पाकिस्तान में भेजी जाती रही हैं। उनमें ज्यादातर कश्मीर में पैदा होने वाले फल, सूखे मेवे, दस्तकारी की वस्तुएं होती थीं। जबिक पाकिस्तान से बहुत सारी चीजें भारत में आती थीं। इस तरह भारत को इस फैसले से कोई खास नुकसान नहीं होगा। जो चीजें वह पाकिस्तान भेजता रहा है, उनका बहुत बड़ा बाजार भारत में ही है। फिर अनेक देश उन चीजों के खरीदार हैं। जबिक पाकिस्तान की वस्तुएं अगर भारत नहीं पहुंचेंगी, तो उसे खासा नुकसान उठाना पड़ेगा। दूसरे सार्क देशों के साथ भी उसके व्यापारिक संबंध अच्छे नहीं हैं, सो उसे अपने माल की खपत के लिए नया बाजार तलाशना आसान नहीं होगा।

जहां तक संयुक्त राष्ट्र में अपील करने के उसके फैसले की बात है, वह पाकिस्तान के पक्ष को कितनी गंभीरता से लेगा, दावा नहीं किया जा सकता। भारत शुरू से कहता रहा है कि कश्मीर समस्या उसका अंदरूनी मामला है, और वह बिना बाहरी मध्यस्थता के खुद इसका हल निकाल लेगा। इसलिए धारा तीन सौ सत्तर हटने के बाद न तो अमेरिका ने पाकिस्तान के पक्ष में कोई प्रतिक्रिया दी है और न संयुक्त राष्ट्र की तरफ से कोई आपत्ति दर्ज हुई है। कश्मीर को मिली स्वायत्तता संविधान के एक अस्थाई प्रावधान के तहत थी, उसे समाप्त कर भारत ने उसे संघीय ढांचे में गृंथने का फैसला किया है, तो इस पर संयुक्त राष्ट्र को भी क्या आपित हो सकती है! फिर पाकिस्तान के साथ राजनियक संबंधों को घटाने से भारत को क्या नुकसान होने वाला है! यह पहला मौका नहीं है, जब पाकिस्तान ने भारतीय उच्चायुक्त को वापस भेजने का फैसला किया है। सामान्य तनातनी की स्थितियों में भी वह इस तरह के कदम उठाता रहा है। यह कदम भी उसका हताशा में ही उठाया गया है। अगर उसे अपनी सुरक्षा की इतनी ही चिंता है, तो अपने यहां पनाह पाए आतंकी संगठनों पर नकेल कसने पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

# असुरक्षित सफर

भारतीय रेलगाड़ियों में असुरक्षित सफर को लेकर लंबे समय से सवाल उठते रहे हैं। पर ऐसा लगता है कि रेल महकमे के लिए ये सवाल कोई खास अहमियत नहीं रखते। वरना यह कैसे हो पाता कि चलती ट्रेनों में आपराधिक तत्त्व लूटपाट से लेकर महिलाओं से छेड़छाड़ की वारदात को अंजाम देते ही रहे हैं और अब खुद रेलवे के कर्मचारी भी ऐसी घटनाओं में लिप्त होने लगे हैं। जबकि किसी आपराधिक घटना के दौरान यात्रियों को उम्मीद होती है कि ट्रेन में मौजूद रेलवे के कर्मचारी उनकी मदद करेंगे। गौरतलब है कि मंगलवार की रात दिल्ली-रांची राजधानी एक्सप्रेस में सफर करने वाली एक छात्रा शायद इस बात से आश्वस्त रही होगी कि इस स्तर की ट्रेन में जाना सुरक्षित है और उसके साथ किसी तरह की आपराधिक घटना नहीं होगी। लेकिन इससे बडी विडंबना क्या होगी कि कोई महिला अपने खिलाफ अपराध होने की स्थिति में मदद के लिए जिस टीटीई को बुलाती, उसने खुद ही छात्रा के साथ आपराधिक हरकत की कोशिश की। सामने आई शिकायत के मुताबिक राजधानी एक्सप्रेस में सवार छात्रा को टीटीई और वेटर ने मिलीभगत कर खाने के लिए दी गई आइसक्रीम में कुछ नशीला पदार्थ मिला दिया और उससे छेड़छाड़ की कोशिश की।

इस मामले में ज्यादा अफसोसनाक यह है कि आरोपों के कठघरे में टीटीई और खाना परोसने वाला एक बैरा है। सवाल है कि इन दोनों की हरकतें किसी दूसरे अपराधी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति से कितनी अलग हैं? इस तरह की घटना के बाद ट्रेन में सफर करने वाले यात्रियों के सामने एक बड़ा संकट यह खड़ा हो जाता है कि वे सामान्य अपराधियों और खुद रेलवे कर्मचारियों में कैसे फर्क करें, कैसे उनकी पहचान की जाए! खासतौर पर इसलिए भी कि दूसरी सामान्य ट्रेनों के मुकाबले राजधानी एक्सप्रेस जैसी ट्रेन से सफर को अपेक्षया ज्यादा सुविधाजनक और सुरक्षित माना जाता है। लेकिन अगर इन ट्रेनों में भी सफर कर रही महिलाओं के साथ ऐसी घटना होती है तो अंदाजा लगाया जा सकता है कि बाकी ट्रेनों में क्या हालत हो सकती है। इस घटना का एक पहलू ज्यादा चिंताजनक है कि ट्रेन में सफर करने वाले यात्रियों के खाने-पीने के सामान में ख़ुद ट्रेन के टीटीई और बैरे की मिलीभगत से कोई नशीला पदार्थ मिलाया जा सकता है। अब कोई यात्री और खासतौर पर कोई महिला कैसे भरोसा करे कि राजधानी एक्सप्रेस के स्तर की ट्रेन में उसे दिया गया खाना सुरक्षित है?

आए दिन ट्रेनों में होने वाली लूटपाट और छेड़छाड़ की घटनाएं कोई छिपी बात नहीं हैं। जब भी इस तरह की घटना सुर्खियों में आती है तब रेल महकमा एक रटा-रटाया आश्वासन जारी करता है कि वह भविष्य में ऐसी घटनाओं की रोकथाम के लिए पर्याप्त कदम उठाएगा। लेकिन इन आश्वासनों की हकीकत किसी से छिपी नहीं है। सुरक्षा-व्यवस्था चाक-चौबंद करने के नाम पर वसूले गए पैसे के बावजूद अगर आपराधिक तत्त्वों के साथ-साथ खुद ट्रेन कर्मचारी भी किसी महिला के सफर को असुरक्षित बनाने में लग जाएं तो ऐसे में क्या उपाय बचता है? यह समझना मुश्किल है कि एक ओर भारतीय रेल को अंतरराष्ट्रीय स्तर का बनाने का दावा किया जाता है, बुलेट ट्रेन जैसी महंगी और महत्त्वांकाक्षी परियोजनाएं जमीन पर उतारने की कोशिश चल रही है, लेकिन मौजूदा व्यवस्था में यह सुनिश्चित करने की जरूरत प्राथमिक नहीं है कि यात्रियों का सफर कैसे सुरक्षित पूरा हो।

#### कल्पमधा

अपनी निंदा सुनने वाला सारे जगत पर विजय प्राप्त कर लेता है। -मदनमोहन मालवीय

# बाढ़ में तैरते सवाल

योगेश कुमार गोयल

बांधों के टूटने और उनमें आई दरारों के कारण हर साल बाढ़ का जो विकराल रूप सामने आता है, उसके मद्देनजर यह सवाल बहुत अहम है कि बाढ़ को प्राकृतिक आपदा का नाम देकर पल्ला झाड़ने के बजाय ऐसे बांधों की मानसून से पहले ही ईमानदारी से जांच करा कर उनकी मजबूती और मरम्मत के लिए समुचित कदम क्यों नहीं उठाए जाते? प्रशासन क्यों मानसून से पहले ही भारी वर्षा से उत्पन्न होने वाले संकटों से निपटने के लिए मुस्तैद नहीं होता?

छ दिनों पहले तक देश के जिन राज्यों में सूखे और जल संकट को लेकर हाहाकार मचा था, आज वही राज्य बाढ़ से निपटने के स्थायी प्रबंध न होने के कारण बाढ़ की विभीषिका से जूझ रहे हैं। हालात ऐसे हैं कि पूर्वोत्तर राज्यों सहित बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों के कई इलाके बाढ़ के पानी से लबालब हैं। कहीं बांध या तटबंध टूट कर बाढ़ से होती तबाही को विकराल रूप दे रहे हैं तो कहीं निदयां पहले ही रेत या गाद से भरी होने के कारण वर्षा का जल उनमें समाने की जगह न बचने से बाढ़ की स्थिति बनी है।

माना कि प्राकृतिक आपदाओं को पूरी तरह नहीं रोका जा सकता, किंतु उच्च स्तर की तकनीक और बेहतर प्रयासों से उसके प्रभावों को न्युनतम अवश्य किया जा सकता है। इस साल कई महीने पहले ही सामान्य मानसून के साथ ही बाढ़ की आशंका भी

व्यक्त की गई थी। लेकिन बाढ की आशंका वाले राज्यों में वहां की सरकारों ने इस आपदा से निपटने के लिए ऐसी तैयारियां नहीं कीं जिनसे लोगों को उफनती निदयों के प्रकोप से काफी हद तक बचाया जा सकता था। चिंता की बात है कि विश्वभर में बाढ़ के कारण होने वाली मौतों का पांचवां हिस्सा भारत में ही होता है और बाढ़ की वजह से हर साल देश को हजारों करोड़ का नुकसान होता है। बाढ़ जैसी आपदाओं के चलते जान-माल के नुकसान के साथ-साथ लाखों हेक्टेयर क्षेत्र में फसलों के बर्बाद होने से देश की अर्थव्यवस्था पर इतना बुरा प्रभाव पड़ता है कि उस राज्य का विकास सालों पीछे चला जाता है।

पंजाब में पिछले दिनों घग्गर नदी पर बना बांध टूट जाने से करीब दो हजार एकड़ कृषि भूमि जलमग्न हो गई। बिहार के दरभंगा और मधुबनी में भी कमला बलान बांध कई जगहों से टूट

गया और बड़े हिस्से को अपनी जद में ले लिया। सरकारी तंत्र द्वारा हर साल बाढ़ जैसे हालात पैदा होने के बाद बांधों या तटबंधों की कामचलाऊ मरम्मत कर उन्हें भगवान भरोसे छोड़ दिया जाता है और अगले साल फिर बाढ़ का तांडव सामने आने पर उसे प्राकृतिक आपदा की संज्ञा देने की कोशिशें शुरू हो जाती हैं। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने इस बार भी बिहार में आई बाढ़ को प्राकृतिक आपदा बता कर पल्ला झाड़ लिया। लेकिन वे यह भूल गए कि बिहार की उफनती निदयों के कहर से बचने के लिए उत्तरी बिहार में लोगों ने वर्षों पहले श्रमदान करके कई मजबूत तटबंध बनाए थे, जो अनेक वर्षों तक कारगर भी साबित हुए। इनमें से कई तटबंध अब इतने

उनमें जगह-जगह दरारें आ जाती हैं और हर समय उनके टुटने और भारी तबाही का बडा खतरा मंडराता रहता है। तटबंधों में इन्हीं बड़ी-बड़ी दरारों के कारण इस साल बाढ़ की चपेट में आए दरभंगा, मधुबनी, सीतामढ़ी, पूर्वी चंपारण, सुपौल, शिवहर आदि जिलों में तबाही मची।

बांधों के टूटने और उनमें आई दरारों के कारण हर साल बाढ़ का जो विकराल रूप सामने आता है, उसके मद्देनजर यह सवाल बहुत अहम है कि बाढ़ को प्राकृतिक आपदा का नाम देकर पल्ला झाड़ने के बजाय ऐसे बांधों की मानसन से पहले ही ईमानदारी से जांच करा कर उनकी मजबूती और मरम्मत के लिए समचित कदम क्यों नहीं उठाए जाते? प्रशासन क्यों मानसून से पहले ही भारी वर्षा से उत्पन्न होने वाले संकटों से निपटने के लिए मुस्तैद नहीं होता? क्यों हमारी संपूर्ण व्यवस्था हर साल मानसून के दौरान आपदाओं और चुनौतियों के समक्ष बौनी और असहाय नजर आती है ? हालात इतने खराब हो चुके हैं कि जब भी औसत से ज्यादा बारिश हो जाती है तो बाढ़ आ जाती है। दरअसल हम अभी तक वर्षा जल संचयन के लिए कोई कारगर योजना नहीं बना सके हैं। हम समझना ही नहीं चाहते कि सुखा और बाढ़ जैसी आपदाएं पूरी तरह एक-दूसरे से ही जुड़ी हैं और इनका स्थायी समाधान जल प्रबंधन की कारगर योजनाएं बना कर और उन पर ईमानदारीपूर्वक काम करके ही संभव है।

जहां तक असम में बाढ़ से हो रही तबाही की बात है तो 1986 के बाद वहां पहली बार बाढ़ के



कमजोर हो चुके हैं कि थोड़ी-सी बारिश में ही इतने भयावह हालात बने हैं जब राज्य के सभी हाय-तौबा मचाने लगते हैं। प्रकृति ने तो पहाड़ों की जिलों में जल प्रलय जैसी स्थिति पैदा हुई है, जिससे साढ़े चार हजार से भी अधिक गांवों के करीब साठ लाख लोग प्रभावित हुए हैं। गैंडों के लिए विख्यात काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान का नब्बे फीसद हिस्सा पानी में डूबा है। असम हर साल इस मौसम में ब्रह्मपुत्र सहित सभी प्रमुख निदयों के उफान से इसी तरह बाढ़ से जूझता रहा है। हर साल आने वाली बाढ़ से निपटने के लिए राज्य सरकार ने 1980 में ब्रह्मपुत्र बाढ नियंत्रण बोर्ड का गठन भी किया गया था। लेकिन करीब चार दशक बीत जाने के बाद भी इस बोर्ड की क्या उपलब्धियां हैं, यह बाढ से इस साल पैदा हए भयावह हालात बयां कर रहे हैं।

बिहार हो या असम अथवा देश के अन्य राज्य. हर साल जब भी किसी राज्य में बाढ़ जैसी आपदा एक साथ करोड़ों लोगों के जनजीवन को प्रभावित करती है तो केंद्र और राज्य सरकारों के मंत्री, मुख्यमंत्री बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के हवाई दौरे करते हैं और सरकारों द्वरा बाढ़ पीड़ितों के लिए राहत राशि देने की घोषणाएं की जाती हैं। लेकिन जैसे ही बाढ का पानी उतरता है, सरकारी तंत्र बाढ़ के कहर को बड़ी आसानी से भुला देता है। देखा जाए तो करोड़ों लोगों की जीवनरेखा को प्रभावित करती बाढ़ जैसी आपदा सरकारी तंत्र के लिए 'सरकारी खजाने की लूट के उत्सव' जैसी बन कर रह गई हैं।

देश में आजादी के कुछ वर्षों बाद राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की स्थापना की गई थी। इसके जरिए केंद्र सरकार राज्य सरकारों के सहयोग से राष्ट्रीय बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम के अंतर्गत देशभर में बाढ़ से

> सुरक्षा प्रदान करने के लिए तटबंध, लंबी नालियां और गांवों को ऊंचा करने जैसे काम करती है। पिछले पचास सालों में बाढ़ पर ही सरकारों ने एक सौ सत्तर हजार करोड़ रुपए से भी ज्यादा धनराशि खर्च कर डाली। लेकिन इतना कुछ होने के बाद भी अगर हालात सुधरने के बजाय साल दर साल बदतर होते जा रहे हैं तो समझा जा सकता है कि कमी आखिर कहां है! सीधा-सा अर्थ है कि बाढ़ प्रबंधन कार्यक्रम को संचालित करने वाले लोग अपना काम जिम्मेदारी, ईमानदारी और मुस्तैदी के साथ नहीं कर रहे थे।

> आज देश के पर्वतीय क्षेत्र भी प्रकृति का प्रकोप झेलने को अभिशप्त हैं। लेकिन हम तमाम कारण जानते हुए भी जान-बूझकर अनजान बने रहते हैं और जब एकाएक तबाही का कोई मंजर सामने आता है तो

संरचना ऐसी बनाई है कि तीखे ढलानों के कारण वर्षा का पानी आसानी से निकल जाता था। किंतू पहाड़ों पर भी अनियोजित विकास, नदियों के करीब पहाड़ों पर होती खुदाई और बढ़ते अतिक्रमण के कारण बड़े पैमाने हो रहे वनों के विनाश ने पहाड़ी क्षेत्रों में भी प्रकृति को कृपित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। बहरहाल, यदि हम चाहते हैं कि देश में हर साल ऐसी आपदाएं भारी तबाही न मचाएं तो हमें कुपित प्रकृति को शांत करने के सकारात्मक उपाय करने होंगे और इसके लिए प्रकृति के विभिन्न रूपों जंगल, पहाड़, वृक्ष, नदी, झीलों इत्यादि की महत्ता समझनी होगी।

## रिवायत की लीक

#### रूबल मित्तल

छले दिनों अपने एक संबंधी की मृत्यु होने पर उनके घर जाना हुआ। वहां शोक सभा को लेकर बातें चल रही थीं, जिसमें एक ऐसी प्रथा की बात चली जो वहां के लोगों के मुताबिक जरूरी रस्म थी पर मेरे लिए एक भूली-भटकी बात। उस रस्म का नाम था 'पगड़ी' जो उत्तर भारतीयों में मृत्यु के बाद होने वाले कर्मकांडों में से एक है। घर से दूर रहने के कारण मेरे दिमाग से ये सब कुछ उतर-सा गया था, लेकिन वहां पहुंचते ही सब कुछ पहले जैसा नजर आने लगा। जिज्ञासावश मैंने अपने एक संबंधी से पूछ लिया कि 'पगड़ी' का मतलब क्या होता है और ये क्यों किया जाता है!

मेरे इस तरह से प्रश्न करने से माहौल में कुछ तनाव-सा महसूस हुआ, फिर भी मैं अपने आपको मासूम की तरह दिखाते हुए अपने प्रश्न पर टिकी रही। इसका उत्तर देने वाले कम थे और डांट कर चुप कराने और खुद को अमेरिकी और दंभी मानने का आरोप लगाने वाले ज्यादा। बहरहाल, एक बुजुर्ग बोले कि ये प्रथा सालों से चलती आ रही है, हमारे बड़े-बूढ़ों ने भी ये किया है, हम भी करते हैं और आगे तुम्हें भी करना है। इसका पूरा उद्देश्य अपने मृत जन को शांति से और

आदर से इस दुनिया से विदा करना है। फिर भी मैं अपनी जिद पर टिकी थी। मैंने इस तरीके से बात दोबारा रखी कि मुझे कुछ समझ नहीं आया। फिर तो सामने वालों में जैसे 'पगड़ी' का अर्थ बताने की होड़-सी चल पडी। एक ने बताया कि इसका मकसद मरने वाले के घर में जो घर का मुखिया बनता है उसे सार्वजानिक रूप से घोषित करना होता है। उसे पगड़ी पहना कर इस तरह से घर का कर्ता-धर्ता घोषित कराया जाता है। मैंने पूछा कि

मुखिया मतलब? तो थोड़े खीझ के साथ उत्तर मिला कि घर को चलाने वाला पुरुष। फिर मैंने कहा कि अगर ऐसा है तो पति की मृत्यु के बाद पत्नी को मुखिया बनाना चाहिए, हर हाल में बेटे यानी पुरुष को क्यों!

घूरती आंखों को नजरअंदाज करते हुए मैंने फिर प्रश्न किया कि अगर किसी परिवार में पुत्र न हो तो? अब सामने वाले ने चिढ़ते हुए कहा कि उस परिस्थिति में उनके खानदान में से चाचा-ताऊ के बेटों को उस परिवार का मुखिया घोषित किया जाता है। मुझे पता था कि अब मेरे सवालों की वजह से माहौल मेरे विपरीत होता जा रहा है, फिर भी पछा कि किसी भी चाचा-ताऊ का बेटा किसी दूसरे के घर का कैसे कर्ता-धर्ता बन सकता है! अपना गजारा तो उस परिवार को

अपने ही दम पर करना होगा! मेरी इस बात के बाद वहां बैठे सभी लोगों को झल्लाहट होने लगी होगी, इसीलिए वे सभी वहां से दूसरी ओर चले गए।

दरअसल, वहां लोगों को इस रिवाज के बारे में उतना ही अंदाजा हो सकता था, जितना एक आम पारंपरिक व्यक्ति को हो सकता था। इस रिवाज का लब्बोलुआब यह था कि इसके जरिए सालों से चलती आ रही संस्था परिवार का आधार पुरुष की सत्ता और ज्यादा सुरक्षित और मजबूत

दुनिया मेरे आगे करना है। बेटे की चाहत शायद इसी वजह से हम भारतीयों को समय के अनुसार खुद को न बदलने की गुंजाइश देती है। कृषि प्रधान देश में बेटों की इच्छा खेतों पर अपने हक को सुरक्षित रखने का जरिया थी। परंपरागत तौर पर बिटिया तो शादी करके दूसरे के घर चली जाती है, पर बेटों से ही वंश की सुरक्षा मानी जाती है।

> समय बदलने पर हम भारतीय अपने खेतों की जिंदगी छोड़ कर शहरों में आ बसे और शहरी संस्कृति के साथ अपनी ग्रामीण आंचलिकता को गड्डमड्ड कर अपना जीवन जीते आ रहे हैं। नतीजा यह निकला कि अपनी कुछ सांस्कृतिक-सामाजिक विरासत को हमने बिना सोचे-समझे आत्मसात कर लिया और कुछ में समय के हिसाब से फेर-बदल कर लिया। लेकिन

जहां पर भी बात धर्म और लोक-परलोक से जुड़ी हुई थी, उसे बिना कुछ प्रश्नों के ज्यों का त्यों उतार लिया गया, क्योंकि आदमी अपने विवेक को उपयोग में लाने से कतराता है। उसे लगता है कि जैसे सब करते आ रहे हैं, वैसे करना ही सही रहेगा।

आज एक ओर लड़की पैदा कर उसे पढ़ाने-लिखाने की बातें होती हैं, वहीं इस प्रकार के रीति-रिवाजों से एक झटके में इस बात का औचित्य खत्म किया जाता है। परिवार में किसी की मृत्यु होने पर जितना कर्तव्य एक बेटे का उस परिवार को संभालने के लिए होता है, उतना ही बेटियों का। फिर इस प्रकार के विधि-विधान से हम किसी भी बराबरी के हक को और हल्का करने का काम करते हैं। इसीलिए कोई आश्चर्य नहीं कि जब हम बेटों की चाह में घुमते मां-बाप देखते हैं, तो उनका बेटों की शादी में खूब पैसे लेने के अलावा अपना लोक-परलोक सुधारने की भी इच्छा छिपी होती है।

बदलते हुए समाज और परिस्थितियों के अनुसार हम बहुत बदले हैं। इस प्रकार के रीति-रिवाज समाज में मौजूद किसी भी प्रकार की बराबरी के अधिकार को नुकसान पहुंचाते हैं। थोड़े से विवेक से यह संभव हो सकता है कि हम आने वाली पीढ़ियों को एक खुला और समान अधिकारों वाला समाज दे सकें।

## इम्तिहान और भी

रमीर में 'कुछ बड़ा होने वाला है' के सस्पेंस से आखिर पर्दा उठ ही गया। राष्ट्रपति के एक हस्ताक्षर ने उस ऐतिहासिक भूल को सुधार दिया जिसके बहाने पाक सालों से वहां आतंकवादी गतिविधियों को अंजाम देने में सफल होता रहा। लेकिन यह समझ से परे है कि गुलाम नबी आजाद, महबूबा मुफ्ती, उमर या फारूक अब्दुल्ला सरीखे नेता जो कल तक कहते थे कि कश्मीर समस्या का हल सैन्य नहीं बल्कि राजनीतिक है, वे केंद्र सरकार के इस राजनीतिक हल को क्यों नहीं पचा पा रहे हैं ? शायद इसलिए कि केंद्र के इस कदम से कश्मीर में अब इनकी राजनीति की कोई गुंजाइश नहीं बची है। लेकिन क्या यह सब इतना आसान था? घरेलू मोर्चे पर भले ही केंद्र सरकार ने इसके संवैधानिक, कानूनी, राजनीतिक, आंतरिक सुरक्षा और विपक्ष समेत लागभग हर पक्ष को साधकर अपनी कूटनीतिक सफलता का परिचय दिया है लेकिन अभी इम्तिहान आगे और भी है।

पाक की घरेलू राजनीति, उसके चुनाव सब कश्मीर के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं तो वह इतनी आसानी से हार नहीं मानेगा। इसीलिए वह अंतरराष्ट्रीय समुदाय का ध्यान इस ओर आकर्षित करने में लगा है। जो लोग इस समय घाटी में सुरक्षा के लिहाज से केंद्र सरकार द्वारा उठाए गए कदमों जैसे अतिरिक्त सैन्य बलों की तैनाती, धारा 144 या नेताओं की नजरबंदी को लोकतंत्र की हत्या या तानाशाही रवैया कह रहे हैं उन्हें नहीं भूलना चाहिए कि पाक की कोशिश होगी कि किसी भी तरह घाटी में कश्मीरियों के विद्रोह के नाम पर हिंसा की आग सुलगाई जाए ताकि वह अंतरराष्ट्रीय मंचों पर संदेश दे पाए कि भारत कश्मीरी अवाम की आवाज को दबा कर वहां अन्याय कर रहा है। इस बहाने वह संयुक्त राष्ट्र और अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग जैसी संस्थाओं को दखल देने के लिए बाध्य करने की फिराक में है। इसलिए भारत के कुछ दल केंद्र सरकार के इन कदमों का विरोध करके न सिर्फ पाकिस्तान की मदद कर रहे हैं बल्कि एक आम कश्मीरी के साथ भी अन्याय कर रहे हैं।

विगत 70 सालों ने साबित किया है कि धारा 370 वह लौ थी जो कश्मीर के गिने चुने राजनीतिक रसूख वाले परिवारों के घरों के चिरागों को तो रोशन कर रही थी लेकिन आम कश्मीरी के घरों को आतंकवाद अशिक्षा और गरीबी की आग से जला रही थी। जब 21वीं सदी के भारत के युवा स्किल इंडिया और मेक इन इंडिया के जरिए उद्यमी बनकर अंतरराष्ट्रीय मंच पर भविष्य के भारत की सफलता के किरदार बनने के लिए तैयार हो रहे थे तो कश्मीर के युवा 500 रुपए के लिए पत्थरबाज बन कर

भावनात्मक रूप से भी जोडेगा। जरूरत है आम कश्मीरी के मन में इस फैसले के पार एक नई खशहाल सबह के होने का विश्वास जगाने की. उसका विश्वास जीतने की। कटनीतिक और राजनीतिक लडाई तो केंद्र सरकार जीत चुकी है लेकिन उसकी असली चुनौती कश्मीर में सालों से चल रहे इस रणनीतिक युद्ध को जीतने की है।

नीलम महेंद्र, फाल्का बाजार, लश्कर, ग्वालियर

#### किस ओर

मनुष्य का इतना ज्यादा नैतिक पतन हो गया है कि अब हम जानवर से भी ज्यादा हिंसक होते जा रहे हैं। हाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-८, सेक्टर-7, नोएडा २०१३०१, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

भविष्य के आतंकवादी बनकर तैयार हो रहे थे। क्या हम एक आम कश्मीरी की तकलीफ का अंदाजा गृहमंत्री के राज्यसभा में दिए इस बयान से लगा सकते हैं कि वह एक सीमेंट की बोरी की कीमत देश के किसी अन्य भाग के नागरिक से 100 रुपए ज्यादा चुकाता है सिर्फ इसलिए कि वहां केवल कुछ लोगों का रसुख चलता है?

अब सरकार के इस कदम से राज्य में निवेश होगा, उद्योग लगेंगे. पर्यटन बढेगा तो रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे जिनसे खुशहाली आएगी। इसके अलावा अपने अलग संविधान और अलग झंडे के अस्तित्व के कारण जो कश्मीरी अवाम आजतक भारत से अपना भावनात्मक लगाव नहीं बना पाया अब भारत के संविधान और तिरंगे को अपना कर उसमें निश्चित रूप से एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन का आएगा जो धीरे-धीरे उसे भारत के साथ

दिल्ली की एक झकझोरने वाली घटना सामने आई। यहां मजनू का टीला नामक जगह पर फुटपाथ पर सो जाने की वजह से एक लड़के ने दूसरे लड़के की हत्या कर दी।

वजह सिर्फ इतनी थी कि कूड़ा बीनने का काम करने वाला वह बदिकस्मत लड़का फुटपाथ पर दूसरे लड़के की जगह पर सो गया था इतनी-सी बात पर दूसरे लड़के को ऐसा गुस्सा आया कि उसने ईंट और डंडों से पीट-पीट कर उसकी हत्या कर दी। आखिर इतना ज्यादा गुस्सा आने की क्या वजह है? किस ओर जा रहे हैं हम? हमारी मानसिकता कैसी होती जा रही है! एक तरफ हम चांद पर अपना झंडा फहरा रहे हैं और दूसरी तरफ हिंसक जानवर में तब्दील हो रहे हैं। हमारे समाज के बृद्धिजीवी वर्ग को इस पर चिंतन करना चाहिए।

बुजेश श्रीवास्तव, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

### पिघलते ग्लेशियर

एक अमेरिकी रिपोर्ट के अनुसार बीते 15 वर्षों में भारत में हिमाच्छादित ग्लेशियरों के पिघलने की रफ्तार दोगनी हो गई है और सियाचिन व गंगोत्री सहित हिमालय के कई ग्लेशियरों का अस्तित्व खतरनाक स्थिति में पहुंच चुका है। यह सब पृथ्वी के बढते तापमान, घटते जंगलों और पर्यावरण प्रदुषण के कारण हो रहा है। पर्यावरण वैज्ञानिकों के मुताबिक पिछले कुछ वर्षों में ग्लेशियर करीब हर वर्ष 20 इंच घट रहे हैं। यदि यही रफ्तार रही तो आने वाले कछ वर्षों में कई ग्लेशियरों का अस्तित्व ही नहीं बचेगा। हिमालय के ग्लेशियरों से भारत की जिन नदियों में साल भर पानी का प्रवाह रहता है, वे सुखने लगेंगी और एक बड़े भूभाग में जल संकट पैदा हो जाएगा। लिहाजा, समय रहते प्रदूषण और बढ़ते तापमान में कमी करना आवश्यक हो गया है। अधिक से अधिक पेड़ लगाकर भी इस समस्या से निपटा जा सकता है।

संजय डागा, हातोद, मध्यप्रदेश

## मिलावटी दूध

भारत के बारे में कहा जाता है कि यहां कभी दुध की निदयां बहा करती थीं। अर्थात, भारत में इतने दुधारू पशु थे कि दुध खरीदा या बेचा नहीं जाता था। पर आज वही दुध मिलावट का केंद्र बना हुआ है। तेल, ग्लुकोज, यूरिया, मिल्क पाउडर आदि से सिंथेटिक दूध बनाकर बेचने वाले कुछ वर्षों में करोड़पति बन चुके हैं। क्या हम सोच सकते हैं कि हमारे बच्चों को दिया जाने वाला दुध उनके लिए विष का कार्य करेगा? इसके मद्देनजर मिलावट के व्यापार में लिप्त हर व्यापारी, अधिकारी, कर्मचारी को उम्र कैद की सजा हो. साथ ही खाद्य पदार्थों की उचित जांच के मानक लागू किए जाएं। अफसोस की बात है कि हमारे देश में खाद्य सामग्री में मिलावट रोकने के लिए कानून बने तो हैं, लेकिन उन पर अमल नहीं होता।

मंगलेश सोनी, मनावर, जिला धार